शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 मार्च 2013

बद्री सिंह भाटिया के कथा – साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. जोगिन्द्र कुमार यादव
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (इग्नू)
क्षेत्रीय केन्द्र, चण्डीगढ़

शोध संक्षेप

हिमाचल के हिन्दी कथा–साहित्य के जाने–माने हस्ताक्षर बद्री सिंह भाटिया यथार्थवादी साहित्यकार हैं। इनका साहित्य मध्यवर्गीय परिवार की आकांक्षाओं, उत्कण्ठाओं, संगति–विसंगति पूर्ण स्थितियों को उभारता हैं। इनके साहित्य का सम्बन्ध सीधा समाज के विभिन्न वर्गों से है। किस प्रकार मध्यवर्गीय परिवारों में ऊंच–नीच का भेद पनपा हुआ है, इस सच्चाई को साथ लेकर साहित्य रचते हैं। वातावरण के बारीक से बारीक रेशों को उभारने और घात–प्रतिघातों को तीव्रतम रूप में प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने में भाटिया सिद्धहस्त हैं। इनका व्यक्तित्व समूचे कृतित्व को रूप और आकार देता है। व्यक्तित्व के सूत्र जीवन भर कृत्यों में फैले रहते हैं। प्रत्येक कृत्य की जड़ें व्यक्तित्व में बड़ी गहरी होती हैं। भाटिया ने निःस्वार्थ भावना से नवोदित लेखकों को आगे लाने में अपना योगदान दिया। मात्र चौदह वर्ष की आयु से लेखन के क्षेत्र से जुड़े भाटिया ने कहानी, उपन्यास, कविता, आलोचना तथा संपादन व पत्रकारिता के क्षेत्र में अपना विशेष स्थान बना लिया है। उनकी लेखकीय प्रतिभा का ज्वलन्त उदाहरण है– उनका कृतित्व। विभिन्न साहित्यिक विधाओं पर लेखनी चलाकर अतुलनीय प्रतिभा का परिचय दिया है। उनका मौलिक कृतित्व विभिन्न रूपों और आकारों में प्रस्फुटित हुआ है। ग्रामीण परिवेश और सामाजिक यथार्थ का इनकी रचनाओं पर गहरा प्रभाव पड़ा है। जीवन के यथार्थवादी सत्यों से इनकी रचनाएं अपनी अनुभूति में मानवीय मूल्यों और सहज सम्बन्ध–सरोकारों को बिखेरती हैं। बद्री सिंह भाटिया उन कहानीकारों में से हैं जिन्होंने थोड़े समय में अपनी पहचान न केवल हिमाचल के कथा–साहित्य में बनाई बल्कि समकालीन कहानी साहित्य में भी अपनी उपस्थिति दर्ज करवाई है।

मुख्य शब्दः
गोम्पा – बौद्ध धर्म स्थल, स्याणा – वृद्ध, पुछोआ–पूछना, बाट –राह, रास्ता, ऐबे – अब, ल्वाद – औलाद, देवदासी –गोम्पा में सौंपी गई लड़की, जियां बी – जैसे भी, मंझला – बीच वाला।

प्रस्तावनाः

हिमाचल का हिन्दी कथा–साहित्य सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक विषयगत आयामों को लेकर 20वीं सदी के अन्त में समकालीन कथा साहित्य के समकक्ष अपनी उपस्थिति दर्ज करवा चुका है। सदी के अंतिम दशकों में हिमाचल में बहुत से नवोदित कहानीकार व उपन्यासकार सामने आए। पर्वतीय प्रदेश होने के कारण प्रकृति का आकर्षण न केवल कवियों के लिए अपितु कथाकारों के लिए भी सम्मोहन का केन्द्र रहा है। गांव का परिवेश ग्राम कथाओं के माध्यम से भी चित्रित हुआ है तथा नगर बोध की कथाएं भी ग्रामीण पृष्ठभूमि में लिखी गई हैं। इसे सुखद अनुभूति कहा जा सकता है कि हिमाचली कथाकार निरन्तर अपनी विविधतापूर्ण पहचान का एहसास करवा रहे हैं।

समकालीन कहानीकारों में बद्री सिंह भाटिया का विशिष्ट स्थान है। वे करीब बीस वर्षों से भी अधिक समय से कहानी के क्षेत्र में पाठकों के बीच पहचान बनाये हुए हैं। इनकी कहानियां ग्राम्य जीवन की वर्तमान भावभूमि से सम्पृक्त होने के साथ–साथ यथार्थ की अनुभूतियों एवं मार्मिक संवेदनशीलता की उत्कृष्ट मिसाल हैं, जिनमें यह आभास होता है कि पर्वतीय प्रदेश में सामान्य जन की जिन्दगी कहां से कहां पहुंच गई है। गरीबों तथा दलितों को जो मार जिन्दगी में समय–समय पर झेलनी पड़ती है, उसे भी

बद्री सिंह भाटिया ने अपनी रचनाओं में उभारा है। स्वातन्त्र्योत्तर कहानी ने जो अपना स्वरूप धारण किया है, उस स्वरूप निर्माण में बद्री सिंह भाटिया का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इनकी कहानियां समकालीन परिवेश में जीती हुई कहानियां हैं, जिनमें आम आदमी के जीवन का यथार्थ जुड़ा हुआ है।

बद्री सिंह भाटिया उन कहानीकारों में से हैं जिन्होंने थोड़े समय में अपनी पहचान न केवल हिमाचल के कथा–साहित्य में बनाई बल्कि समकालीन कहानी साहित्य में भी अपनी उपस्थिति दर्ज करवाई है। अपनी रचनाओं में जिस समाज और परिवेश का चित्रण इन्होंने किया है, स्वयं उससे पूरी तरह परिचित होकर ही किया है। परिवेश के जीवन्त चित्रण के साथ भोगे गए यथार्थ को कहानी का कथ्य बनाकर इन्होंने कहानी की पठनगत विश्वसनीयता को कायम किया है। समकालीन परिस्थितियों के अन्तर्गत, सामाजिक जीवन मूल्यों , सम्बन्धों के विघटन और व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार तंत्र में फंसे पात्रों का सजीव चित्रण किया हैं। निरंजनदेव शर्मा के अनुसार, ''साधनविहीन, गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाला तथा वर्ग भेद की मार चप्पे–चप्पे पर झेलने वाला व्यक्ति, बद्री सिंह भाटिया की जादुई यथार्थवाद की शैली में लिखी गई कहानी 'प्रेत संवाद' में देखा जा सकता है।''

बद्री सिंह भाटिया उन कहानीकारों में से हैं जिनके पास कहानी की कला और उसका शिल्प दोनों मौजूद हैं। भाटिया का कहानीकार कहानी कहना बखूबी जानता है। 'यातना शिविर' की कहानियां इसकी गवाह हैं। निरंजन देव शर्मा के अनुसार– ''बहुत प्रभावी ढंग से भ्रष्ट समाज की मानसिकता को, भ्रष्टाचार को सहजता से लेने की सोच को उजागर करती हैं– बद्री सिंह भाटिया की कहानी 'मिठाई'। यह कहानी राजस्व विभाग का कच्चा चिट्ठा भी खोलती है, जहां से एक बार गुजरने पर मनुष्य स्वयं को नंगा महसूस करता है।'' उनकी कहानियां सीधी–सादी सपाट भाषा में अपने गहन अनुभव की आंच में पक कर उस यथार्थ को सामने लाती हैं, जिसे महसूस तो सभी करते हैं परन्तु उसकी तह तक नहीं पहुंच पाते, उसी को उकेरती हैं इनकी कहानियां। इनकी रचनाएं नये विषय का चयन, नयी स्थितियों का आकलन हैं, जो सदैव सजग कथ्य का वस्तुस्थिति से पाठक को साक्षात्कार कराकर एक जीवन दृष्टि की ओर इंगित करती हैं। बद्री सिंह भाटिया कहानी को भोगा हुआ यथार्थ मानते हैं। इनकी कहानियां काल्पनिक जगत से परे हैं। आदर्शवाद इनकी कहानियों को छूता भी नहीं है।

शोध प्रविधि

बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न बद्री सिंह भाटिया हिमाचल के हिन्दी साहित्य के अग्रणी कथाकारों में से एक हैं। उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का संक्षिप्त परिचय देना इस शोध पत्र का उद्देश्य है। उनके कृतित्व को मुख्यतः चार अलग–अलग विधाओं में दर्शाने तथा समग्र साहित्य का समाज शास्त्रीय अध्ययन कर पाठकों के समक्ष लाने का एक प्रयास है। उक्त शोध पत्र में सर्वेक्षण विधि को अपना कर सामग्री एकत्रित की गई है।

व्यक्तित्व एवं कृतित्व परिचय

आकर्षक एवं बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न बद्री सिंह भाटिया का जन्म 4 जुलाई, 1947 को हिमाचल प्रदेश के सोलन जनपद की अर्की तहसील के ग्याणा नामक गांव में हुआ। अपनी प्रारम्भिक शिक्षा गांव के स्कूलों में प्राप्त करने के बाद स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर की शिक्षा हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय से स्वाध्यायी तौर पर ग्रहण की। तदुपरान्त पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला से जनसम्पर्क

एवं विज्ञापन कला में डिप्लोमा किया। सन् 1967 से 1984 तक हिमाचल प्रदेश आयुर्विज्ञान महाविद्यालय शिमला में विभिन्न लिपिकीय पदों पर कार्य करने के पश्चात् सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग में आलेख लेखक, उप सम्पादक तथा सहायक सम्पादक जैसे पदों पर कार्य करते हुए प्रदेश की प्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाओं 'हिमप्रस्थ' तथा 'गिरिराज' का सम्पादन कार्य भी किया। सरकारी सेवा के 58 वर्ष पूर्ण करने के उपरान्त भाटिया प्रदेश के सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग से सेवानिवृत तो हो गए हैं लेकिन उनकी साहित्यिक यात्रा निरन्तर जारी है। साथ ही भाटिया जी बहुत–सी सामाजिक गतिविधियों से भी जुड़े हुए हैं। एक सक्रिय कार्यकर्त्ता के रूप में समाज के उत्थान में अपना योगदान दे रहे हैं।

बद्री सिंह भाटिया का रचना संसार भी उनके व्यक्तित्व के अनुरूप प्रतिबिम्बित हुआ है। मात्र चौदह वर्ष की आयु से लेखन के क्षेत्र से जुड़े भाटिया जी ने कहानी, उपन्यास, कविता, आलोचना तथा संपादन व पत्रकारिता के क्षेत्र में अपना विशेष स्थान बना लिया है। ग्रामीण परिवेश और सामाजिक यथार्थ का इनकी रचनाओं पर गहरा प्रभाव पड़ा है। जीवन के यथार्थवादी सत्यों से इनकी रचनाएं अपनी अनुभूति में मानवीय मूल्यों और सहज सम्बन्ध–सरोकारों को बिखेरती हैं। सन् 1985 में भाटिया का प्रथम कहानी संग्रह 'ठिठके हुए पल' प्रकाशित हुआ। तदुपरान्त एक के बाद एक विभिन्न विधाओं में इनकी रचनाएं प्रकाशित होती रहीं। इनके सम्पूर्ण साहित्य को हम निम्नवत रख सकते हैं:

कहानी संग्रह

बद्री सिंह भाटिया नई कहानी के सशक्त कहानीकार हैं। भाटिया उन कहानीकारों में हैं जिनके पास कहानी की कला और उसका शिल्प दोनों मौजूद हैं। इनके अब तक प्रकाशित कहानी–संग्रह हैं– ठिठके हुए पल (1985), छोटा पड़ता आसमान (1986), मुश्तरका जमीन (1986), बावड़ी तथा अन्य कहानियां (1988), यातना शिविर (1992), तथा कवच (2003)।

उपन्यास साहित्य

उपन्यास कथा–साहित्य की ऐसी विधा है जिसमें मानव–जीवन का बहुआयामी चित्रण रहता है। मानव–जीवन की समस्याओं, अनुभूतियों तथा संवेदनाओं का व्यापक रूप में जो चित्र उभरता है, वह पाठक को वास्तविक जीवन का प्रतिबिम्ब ही प्रतीत होता है। व्यापक धरातल पर जीवन को परिभाषित करने का सबसे सशक्त साधन उपन्यास है। बद्री सिंह भाटिया का अभी तक एक 'पड़ाव' नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ है। भाटिया का यह बहुत ही सफल उपन्यास है जिसे हिमाचल प्रदेश कला संस्कृति एवं भाषा अकादमी द्वारा वर्ष 1987 में 'साहित्य सम्मान' से सम्मानित भी किया गया।

काव्य संग्रह

कविता भावात्मक होती है। कविता वैयक्तिक भी होती है और समाज–कल्याण की भावना से प्रेरित भी। कविता का बाह्य व्यक्तित्व शब्दार्थ से बनता है और व्यक्तित्व भावों एवं विचारों से। बद्री सिंह भाटिया द्वारा रचित एक मात्र काव्य संग्रह 'कंटीली तारों का घेरा' है जिसमें पहाड़ी जीवन में आ रहे बदलाव को एक तरह से गांव और शहर की जद्दोजहद के रूप में रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। इस संग्रह की कविताएं ग्रामीण संस्कारों को समेटे हुए है, जहां व्यक्ति अपने पुश्तैनी गांव से बाहर आकर पहाड़ी शहर की भाषा और उसका व्याकरण जानते–समझते हुए गांव के खिलाफ शहर की साजिश को अंकित करने के लिए प्रयासरत रहता है। उक्त काव्य संग्रह गांव से शहर तक की जिन्दगी को समेटता हुआ एक अहम

सवाल पर केन्द्रित हो जाता है– आदमी खाने के लिए जीता है और जीने के लिए खाता है। इस प्रकार इस संग्रह में ग्रामीण लोग जो मज़दूरी करके अपना पेट पालते हैं, उनकी कष्टप्रद जिन्दगी को उभारा है।

अन्य साहित्य

बद्री सिंह भाटिया रेडियो लेखन, समीक्षा, आलोचना, सम्पादन तथा समसामयिक लेखन से भी जुड़े हुए हैं। इनके बहुत से लेख आकाशवाणी से प्रसारित होते रहे हैं। देश की कोई ही ऐसी प्रतिष्ठित पत्रिका होगी जो इनके लेखों के प्रकाशन से अछूती रही होगी। भाटिया का हिन्दी कथा–साहित्य विशेषकर हिमाचल के हिन्दी–कथा साहित्य को विशेष योगदान रहा है।

साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन

साहित्य और समाज परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। किसी भी देश के सामाजिक जीवन के भाव–जगत और बौद्धिक जगत का परिचय साहित्य से मिलता है। अतः साहित्य समाज के जीवन का जीवंत इतिहास होता है। समाज ही साहित्य का आधार है। समाज की परिस्थितियों के अनुसार साहित्य का निर्माण होता है। समाज की गतिविधियों की प्रतिध्वनि, क्रिया–कलापों का प्रतिबिम्ब, घटनाओं की प्रतिच्छाया, विचारों और अनुभूतियों की अभिव्यक्ति साहित्य में होती है। समाजशास्त्रीय अध्ययन के द्वारा हम किसी व्यक्ति विशेष के साहित्य के विविध पहलुओं का अध्ययन करते हैं जैसे कि, सामाजिक स्थितियां एवं समस्याएं, परिवार और स्त्री–पुरुष सम्बन्ध, धर्म एवं संस्कृति, आर्थिक एवं राजनीतिक स्थितियां और सम्बद्ध समस्याएं आदि। बद्री सिंह भाटिया ने अपने कथा साहित्य में इन सभी सन्दर्भों को पूर्णतः उभारने का सफल प्रयास किया है।

'ठिठके हुए पल' कहानी में देहाती जीवन को अपने पूरे परिवेश के साथ उभारने की कोशिश की गई है। पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के अन्तराल को लेखक ने रेखांकित किया है। अस्सी वर्ष की सरकारी नौकरी से सेवानिवृत बूढ़ा गांव के ही नहीं वरन अपने परिवार के बदलाव को भी देखता है। तीन बेटे गांव छोड़कर शहर चले जाते हैं। बीमारी की हालत में भी उसकी परवरिश नहीं करते। वह अपनी बीमारी की हालत में चिन्तन करता है– ''गांव का आदमी, शहर जाकर स्वयं को क्यों भूल जाता है ? क्यों बदल जाता हैं खोखला, स्पंदनहीन–दर्दहीन मुखौटा ओढ़ लेता है। बड़ा और विशिष्ट दिखने की कशमकश, विलक्षण बनने का दावा। सबसे अलग। ऊपर उठा हुआ।'' कहानी में भरे–पूरे परिवार के बिखरने का बहुत ही मार्मिक चित्रण हुआ है। ''बड़े का विवाह हुआ तो घर छोटा लगा। अभी इस बात पर मनन हो ही रहा था कि बड़े ने अलग मकान की घोषणा कर दी और दो दिन बाद चला भी गया। वह चुप रहा। उसी तरह मंझला और छोटा भी अलग हो गये। पतझड़ के वृक्ष की तरह वह देखता रहा हरे पत्तों को अलग होते।'' इस प्रकार बूढ़ा बाप गांव में अकेला रहने लगा और तीनों बेटे अपने–अपने परिवार को लेकर शहर में रहने लगे। कहानी का कथ्य बहुआयामी है। उक्त कहानी में एक बूढ़ी औरत अकेली गांव में रहती है और उसका बेटा शहर में रहता है। जब मां–बाप अपने–अपने बच्चों की बातें कर रहे होते हैं तो नन्दू की बूढ़ी मां कहती है– ''कुछ नी रै, कुछ नी। आज की ल्वादी रा क्या भरोसा? .... स्याणेआ नेड़ै कोई नी आऊंदा। ऐबे म्हारे नंदुए ई देख से कदी पूछोआ जे अम्मा तू जीऊँदी की मरी दी।'' आधुनिकता के रंग में रंगा आज के युवा के लिए खून के रिश्ते भी बेमानी दिखाई देते हैं।

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 मार्च 2013

'सीरी महासीरी' कहानी में बाप–बेटे के सम्बन्धों का चित्रण हुआ है। इसमें एक गरीब पिता का अपने सारे धन को बड़े बेटे की शिक्षा–दीक्षा पर दाव लगाकर प्रतिफल की तलाश को बताया गया है। इस कहानी का कथ्य मार्मिक बन पड़ा है। लड़का शहर के वातावरण, ग्रामीण परिवेश में पली पत्नी के शहर आकर बदल जाने की भावभूमि को लेकर पिता–पुत्र के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व को उकेरती है। बेटा बड़ा होकर जब शहर में नौकरी करने लगता है तो वह शहर का होकर ही रह जाता है। पिता के बार–बार बुलाने पर भी वह घर नहीं आता, जब वह घर आता है तो पिता का देहान्त हो चुका होता है। उसकी मां के शब्दों में– ''तू ऐबे आया रे! तेरा बापू तेरी बाट ई, देखदा रईगा, होर चलीगा....कया एक दिन पहले बी नहीं आई सकेआ तू....क्या ऐ ई दिन देखणा था रे आसा ? तेरे सारे संस्कार छोटे करने पड़े, होर तू....'' ....''कपाल क्रिया बी छोटे ही करनी पड़ी।'' बेटा बाहर जाकर अमीर बनने के लिए इतना व्यस्त हो जाता है गांव में बूढे, बीमार, बेसहारा मां–बाप की अंतिम इच्छा तक पूरी नहीं कर सकता, जिसका शायद उसे थोड़ा भी दुःख या पछतावा नहीं।

'चोमो' कहानी प्रादेशिक अंचल में 'देवदासी' प्रथा को लेकर लिखी कहानी है। इसमें धर्म के अन्धविश्वास में किए जाने वाले अनैतिक और अमानवीय व्यवहार का चित्रण है। कहानी की नायिका 'डोलमा' के जीवन की त्रासदी के जरिये लेखक ने लामाओं के कुकृत्यों और अनाचार को सामने लाया है। डोलमा लामाओं की वासना की शिकार होकर न केवल गर्भवती होती है बल्कि यौन रोग से पीड़ित होकर भटकती है। घुमन्तु जीवन को दर्शाती इस कहानी में बताया गया है कि घुमन्तु परिवारों का कोई ठोर–ठिकाना नहीं होता है। इनका मन जहां करता वहीं डेरा लगाकर बैठ जाते हैं। इस कहानी में डोलमा का परिवार एक घुमन्तु परिवार है। कहानीकार के अपने शब्दों में– ''क्या जीवन है। घर कुल्लु, निवासी लाहौल के। घुमन्तु जीवन क्यों चुना होगा। कहीं कोई ठहराव नहीं बर्फ पड़ने से पहले ही यहां से खिसक जायेंगे। कुल्लु–मनाली या कहीं और। होटल करने का चस्का है। जहां भीड़ देखी ढारा–सा बनाया और चन्द दिनों में एक तम्बूनुमा होटल तैयार।''

कहानी की नायिका डोलमा एक गोम्पा को सौंपी हुई देवदासी होती है। वहां के कष्टों व यातनाओं से दुःखी होकर वह आत्महत्या करने की सोचती है तब दलीप नामक व्यक्ति उसे बचा लेता है। दलीप को उस पर दया आती है और वह उससे शादी कर लेता है। डोलमा के शब्दों में– ''हमने कसमें खाईं, वायदे किये और एक दिन बुद्ध की प्रतिमा के आगे अपनी शादी भी पक्की कर ली। इसके बाद कुछ महीनों तक तो वह आता रहा। फिर एकाएक गायब हो गया।'' दलीप के प्रति डोलमा की अनुरक्ति और उसकी प्रतीक्षा में उसकी बाट जोहना कहानी को मार्मिक बना देता है।

नारी शोषण के लिए समाज में पुरुषों ने अनेक पाखण्डों का सहारा लिया है। गोम्पा की देवदासी प्रथा उसमें एक है। इसमें कहानीकार ने निःसंतान लोगों द्वारा धार्मिक स्थलों पर मनौती मांगने और मनौती के पूरा होने पर पहली संतान को देवता को ही अर्पण कर देने जैसी बुराई को उजागर किया है। इस कहानी में भी गोम्पा में मनौती मांगी जाती है और पहली संतान (डोलमा) को गोम्पा को सौंप दिया जाता है। धार्मिक स्थलों में हो रहे अत्याचारों व शोषण को सहती वह कहती है– ''मुझे अपने मां–बाप पर भी क्रोध आता। बिना विचारे मझे यहां पर चढ़ा दिया। मुझे देवता पर भी घिन आती। यह कैसा

देवता है? जो काम–वासना से प्रसन्न होता है। मुझे पता है। पच्चीस वर्ष के बाद मैं यहां से जा सकती हूं। पर इसके लिए तो न जाने कितनी बार मरना होगा। मेरे लिए हर सुबह नया जन्म देती। एक डोलमा रोज़ मरती। एक डोलमा रोज़ पैदा होती।'' अतः स्पष्ट है कि जो देवदासियॉ गोम्पा में चढ़ाई जाती हैं उन्हें लामाओं की हवस का शिकार होना पड़ता है।

'उसका सपना' कहानी ग्राम पंचायत के चुनाव में हरिजन–सवर्ण के अन्तर्द्वन्द्व की कहानी है। निम्न जाति (शूद्र) के प्रति उच्च वर्ग के अवहेलनापूर्ण व्यवहार का मार्मिक चित्रण इस कहानी में हुआ है। कहानी का नायक लच्छू एक चर्मकार का पुत्र है जो ठाकुरों के जूते बनाने तथा मृत पशुओं को फैंकने का कार्य करता है। इस काम के एवज़ में उसे प्रति वर्ष दस पाये धान, दस पाये मक्की, और तीन पाये खलिहान के मिलते हैं। एक दिन जब अपना पारिश्रमिक लेने वह गांव गया, उस समय का एक संवाद स्पष्ट है– ''....पिता के साथ गया था वह उस दिन ठाकुर से स्याथ लेने। धान की दो ढेरियां लगी थीं। उसने अपने पिता से रंगीन केस वाले थानों की ओर उंगली कर कहा था, ''बाबा, एओ थान लणे आसा।'' उसकी बात उसके पिता ने सुनी हो या न, पर ठाकुर ने सुन ली। कड़कती आवाज में बोले थे, ''क्यों रे! तुतलिए, तेरे लड़के की ऐ हिम्मत, झिंझन खाने की, जा मैं तुझे कस्याटू भी नहीं देता। दूर हो जा, मेरी झिंझन को नज़र लगा दी। साला ....'' इससे स्पष्ट होता है कि जाति प्रथा किस प्रकार हमारे समाज में आज भी व्याप्त है तथा बड़े लोग हमेशा निम्न वर्ग पर कुठाराघात करते रहे हैं।

निम्न जाति की दुर्दशा का वर्णन करते हुए यह दर्शाया गया है कि वे अपने यहां शादी–ब्याह में शहनाई, ढोल–नगाड़ा और पालकी का इस्तेमाल नहीं कर सकते थे। क्योंकि इन सब चीज़ों पर तो केवल ठाकुरों का ही अधिकार था। लच्छु के शब्दों में– ''उस समय पाजामा केवल ठाकुर ही पहन सकते थे। बारात में पालकी में केवल वे ही लोग ब्याह के लिए बैठ सकते थे। लड़की भी डोली में उनकी ही बैठ सकती थी। बाजे में शहनाई, ढोल–नकारा और बाद में अंग्रेजी बाजा भी उनके ही हिस्से था। चर्मकारों के हिस्से तो ताशा और डफाल ही आये थे....।''

इस कहानी में यह भी बताया गया है कि उच्च जाति के लोग निम्न जाति के लोगों पर अत्याचार ही नहीं करते बल्कि उनकी स्त्रियों का शोषण भी करते हैं। निम्न जाति के पुरुषों को अछूत समझा जाता है लेकिन स्त्रियों के साथ अवैध सम्बन्ध चलते रहते हैं। लच्छु के शब्दों में– ''उनकी कुदृष्टि हरिजनों की बहुओं, बेटियों पर सदैव लगी रहती थी। यहां तक कि कुछ स्त्रियों को तो उन्होंने सरेआम रखैल रखा था।'' .....अभी भी ठाकुर की जी–हजूरी करते हैं और उनके आगे झुक कर रहने में ही अपनी भलाई समझते हैं। एक दिन एक ..... लड़के ने ठाकुर को इतना कह दिया था कि हम तुम्हारी अवैध सन्तान हैं, इस सच्चाई को ठाकुर पचा नहीं पाया और बेरहमी से पीट डाला। लच्छु ने लड़के के चिल्लाने की आवाज़ सुनी तो ठाकुर से पूछा। इस पर ठाकुर के शब्दों में– ''नहीं रे, लच्छु नहीं, ये चर्मकार का बच्चा, इसने मुझे डण्डा मारा। मैं इसकी खाल में चेतरू से चूना न भरवाऊं तो ठाकुर नाम नहीं।''

अनुसूचित जाति की बुजुर्ग पीढ़ी ठाकुरों से बगावत करने से डरती थी। लेकिन समय में बदलाव के कारण आज युवा पीढ़ी संघर्ष पर उतर आई है। बोहरा जिस ठाकुर की अवैध सन्तान थी, उसे ठाकुर ने ताना दिया कि अब चर्मकार का बेटा स्कूल में प्रथम आने लगा, प्रत्युत्तर में बोहरा के शब्द– ''इसमें बुराई क्या

है, हम भी तो आपकी ही संतान हैं। ठाकुर बिगड़कर बोला, ''हमारी संतान कैसे हुई।'' तो मैंने कह दिया कि जब तुम लोग हमारी बेटियों से और बहुओं से संबंध रखते हो तो उनसे पैदा हुई औलाद किसकी हुई। इस पर ठाकुर ने उसे धक्का दिया और चुप रहने को कहा। मैंने भी हाथ में लिये सोटे से एक जोर की लगा दी। ठाकुर क्या समझता है अपने को।''

'महादान' कहानी में भलखू के चरित्र के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि आज बीमारी का उपचार आम आदमी के लिए बहुत महंगा है। हर जगह 'पहुंच' का सवाल उठता है। किसी को खून बिना कुछ लिए दिए मिल जाता है तो किसी को अस्पताल में खून न मिलने के अभाव में यूं ही दम तोड़ना पड़ता है। दूसरा अस्पताल के कर्मचारियों के दुर्व्यवहार तथा भ्रष्टाचार को भी इस कहानी में अंकित किया गया है। भलखू बीमारी के इलाज़ के लिए दूर गांव से शहर आता है। हर रोज़ सभी डॉक्टरों के पास चक्कर काटता है लेकिन उसे बिस्तर तक नहीं मिलता। इन्हीं चक्करों में उसकी बीमारी बढ़ती गई। यह क्रम लगभग एक वर्ष तक चलता रहा। अब वह थकान महसूस कर रहा था। चिड़चिड़ापन उसके चेहरे पर उभरने लगा था। मन में प्रश्न उठते, ''क्या गल है जो बिस्तर नी मिलदा।'' आखिर उसने एक दिन अपनी भड़ास डॉक्टर के आगे उगल ही दी। डॉक्टर उसकी पीड़ा समझ पिघल गया था। 'डबलिंग' कर उसे बिस्तर दे दिया। उसने राहत की सांस ली। उसके मन से आवाज फूट पड़ी, ''चलो कियां ई सई बेड तो मिलेआ।'' अस्पतालों में भी राजनीति तथा सिफारिश का बोलबाला है। एक मरीज़ के शब्दों में– ''यहां राजनीति है। पोलटिक्स। सब जगह सिफारिश पर काम होता है।'' अपने दर्द को सहन करता वह मरीज बोला। ....यहां रक्त भी पैसों से मिलता है।'' जब डॉक्टर ने भलखू को ऑपरेशन की बात बताई और खून का इंतजाम करने को कहा तब वह तिलमिलाया। उसने कहा कि मेरी सेहत तो बिलकुल ठीक है फिर खून क्यों ? और यहां गांव से तीन सौ किलोमीटर की दूरी पर कौन उसे खून देगा। उसे अस्पताल का चक्कर समझ नहीं आ रहा था, कभी कुछ बोला जाता कभी कुछ। ''अस्पताल का धंधा उसे किसी भी सूरत में किसी चुनाव पार्टी के कार्यक्रम से बाहर नहीं लगा। दलगत राजनीति है यहा पर। स्वीपर चिलमची तब तक नहीं उठायेगा जब तक कि उसे कुछ बांधा न हो। वर्ना चार मोटी–मोटी गालियां देकर बेमन से काम करता रहेगा। रोगी को एक जगह से दूसरी जगह तक ले जाना अस्पताल के स्टाफ का काम नहीं उसके अभिभावकों का है।'' अतः स्पष्ट है कि सिफारिश, प्रभाव और धन के अभाव में न तो अस्पताल में बिस्तर मिल सकता है और न रोगी के लिए ज़रूरत पड़ने पर 'तीन यूनिट खून' का प्रबन्ध किया जा सकता है।

'मुश्तरका जमीन' कहानी में पारिवारिक रिश्तों के द्वन्द्व को उभारा गया है। रिश्तों का महत्त्व तभी है जब दोनों तरफ से बराबर की अपेक्षाएं रखी जाएं और उन्हें समय–समय पर निभाया भी जाए। जब भुवनेश्वर की चचेरी बहन के पारिवारिक सम्बन्धों में तनाव आ जाता है और दाम्पत्य जीवन में बिख़राव की स्थिति आ जाती है तब उसका चाचा भुवनेश्वर को पत्र लिखकर रिश्तों की परिभाषा समझाने की वकालत करता है। प्रत्युत्तर में नायक के अपने शब्दों में– ''लिखे गये के बारे में सोचता ही रहा। पत्र की एक–एक इबारत समझता रहा। जहां अर्थ भेद लगा, उसे दुबारा पढ़ा– इतने वर्षों तक साथ रहने के बाद, आपके मन में वह ग्रंथि क्यों और कैसे आई? उसका सबब ढूंढता रहा। मन–ही–मन टीस–सी उठती रही––मैंने ऐसा

क्या लिख दिया, जो रिश्तों के बीच तनाव, कुण्ठा और वितृष्णा भर गयी। ....''रमा दीदी तनाव की स्थिति में से गुजर रही है– जीजा जी, उससे लड़कर चले गये हैं– लगभग छोड़ ही दिया है उसे– उन्होंने दूसरी स्त्री रख ली है ....खूब झगड़ा हुआ उनमें....पर तुम रमा को ऐसा–वैसा कुछ न लिखना....'' ....मैं जानता हूं कि दीदी और जीजा जी में पुनर्नवा की स्थिति नहीं है– समर्पण के अर्थ तो वह समझती ही नहीं। उसने वहां विप्लव खड़ा कर रखा है– रोज़ बर्तन ठनकते हैं, रसोई और कमरे की दीवारों से बुड़बुड़ाहट गूंजती है। बच्चे बेअदब हो गये हैं– पिता से पूछते रहते हैं– बोले गये शब्दों के अर्थ''

कहानी का नायक इस बात से क्रुद्ध है कि आज अपने घर में कुछ हुआ तब तो सभी रिश्ते याद आने लगे लेकिन जब मां बीमार थी तब वे सब रिश्ते कहां रह गये थे। नायक के शब्दों में– ''रिश्ते इकतरफा ही नहीं होते। हमसे तो रिश्तों की डोर न खींचने के लिए कहा जा रहा है और स्वयं आप सब क्या कर रहे हैं ? अभी की ही बात लो, मां की बीमारी में क्या रमा आई? उसे क्या पता नहीं था? आपको तो था– कृष्ण को भी और राम भैया को भी– मैंने स्वयं सबको बताया था। आप सबके सामने लाये थे भैया मां को गांव से। कितना बड़ा आपरेशन हुआ उनका। कौन आया पूछने– बोलने कि तुम आज आराम करो, अस्पताल में हम में से कोई रह जायेगा।'' इस प्रकार समाज में बदल रहे खून के रिश्तों का बहुत ही मार्मिक चित्रण इस कहानी में किया गया है।

'परत–दर–परत' कहानी में दाम्पत्य जीवन में तनाव की स्थिति का चित्रण हुआ है। इसमें नारी की महत्त्वाकांक्षा तथा पुरुष के अहं का भी चित्रण हुआ है। नारी–पुरुष प्रेम के नशे में विवाह तो कर लेते हैं किन्तु जब नशा समाप्त हो जाता है तो जो मन में आए बक दिया जाता है। उक्त कहानी में भी एक रोगी और नर्स के बीच प्रेम–सम्बन्ध पैदा हो जाते हैं। उनका यह प्रेम शादी में बदल जाता है। उसके बाद उनकी रोज़–रोज़ की झिक–झिक का उदाहरण स्पष्ट है– ''तुम्हें तो कोई–न–कोई व्याहता। नर्स हो न। पहले तुम्हारा जीवन रहा भी क्या है? कुण्ठा से ग्रसित। महत्त्वाकांक्षा में जीवित रही किसी डॉक्टर की तलाश में न जाने कितनी बार दुल्हन बनी, कितनी बार पत्नी। एक कुंवारी पत्नी और फिर न जाने कितनी बार विधवा। नर्स की जिन्दगी होती भी क्या है।'' नारी को समाज में वासना की दृष्टि से देखा जाता है। वह पुरुष के अहं पर चोट करती हुई कहती है –''तुम पशु हो पशु! आदमीयत नहीं है तुम्हारे में। नर्स अस्पताल में प्रेम करने नहीं काम करने जाती है। उसके मन में सेवा की भावना होती है। फिर तुम्हारे जैसे मर्द ही उसे फ्लर्ट करते हैं। झूठे रोग का बहाना कर छाती में दर्द बताते हैं ताकि नर्स के नर्म हाथ छू जाएं....।'' कहानी में यह भी बताया है कि राजनीति में रहकर ही नेताओं की इज्ज़त व सम्मान होता है। कुर्सी छिनने पर कोई उन्हें पूछता तक नहीं। कुर्सी को सलाम करते हैं। इस कहानी में मन्त्री महोदय को जब दोबारा टिकट नहीं मिलता तो उसकी हालत दयनीय हो जाती है। ''कोई सिपाही उसे सैल्यूट नहीं करता। मुस्करा कर रह जाता है। दुकानदार उसे देख व्यस्तता का बहाना करते, वह समझ रहा था। झण्डी उतरने के बाद आदमी का रुआब भी उतर जाता है। कई बार महसूस होता है कि वह कार में है, झण्डी वाली कार....वह बड़बड़ाने लगता।''

निष्कर्ष

बद्री सिंह भाटिया ने हिन्दी साहित्य की अनेक विधाओं में अपने हस्ताक्षर दर्ज करवाए हैं। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में इनका योगदान अविस्मरणीय रहेगा। सामाजिक, राजनीतिक

तथा धार्मिक व्यवस्था पर व्यंग्य करती बद्री सिंह भाटिया की कहानियों की भाषा सरल, ग्राह्य और प्रभावोत्पादक है। उनके समग्र साहित्य का अध्ययन करने के उपरान्त पता चलता है कि जहां बद्री सिंह भाटिया के कहानी साहित्य का हिमाचल को अद्वितीय योगदान है वहीं समकालीन हिन्दी कहानी में हिमाचल की उपस्थिति दर्ज करवाने का श्रेय भाटिया को ही जाता है। इस पहाड़ी प्रदेश में अनेक प्रतिभाशाली कवि, लेखक, कहानीकार, उपन्यासकार एवं साहित्यकार हुए, जिनमें बद्री सिंह भाटिया का विशिष्ट स्थान है। बद्री सिंह भाटिया समग्रतः नयी कथावस्तु खोजने व चुनने की पैनी दृष्टि रखते हैं। ये पिछले बीस बर्षों से कहानी संसार से जुड़े हुए हैं, इसमें कोई संदेह नहीं कि यह हिमाचल के प्रमुख एवं सधे हुए कथाकार हैं। हिमाचली हिन्दी साहित्य को बद्री सिंह भाटिया से बहुत अपेक्षाएं हैं।

संदर्भ–

1. कीर्ति केसर, स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी का समाज–सापेक्ष अध्ययन : नचिकेता प्रकाशन, दिल्ली, 1982
2. कश्मीरी लाल, साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययनः कथा सन्दर्भ : भावना प्रकाशन, दिल्ली, 1993
3. हेमराज कौशिक, हिन्दी कहानीः स्थिति एवं गति : विभूति प्रकाशन, दिल्ली, 1987
4. सुशील कुमार फुल्ल, हिमाचल का हिन्दी साहित्य का इतिहास : वन्दना पब्लिशर्ज, लुधियाना, 1980
5. बद्री सिंह भाटिया, ठिठके हुए पल : भावना प्रकाशन, दिल्ली, 1986
6. बद्री सिंह भाटिया, यातना शिविर : प्रेम प्रकाशन मन्दिर, दिल्ली, 1992
7. बद्री सिंह भाटिया, छोटा पड़ता आसमान : रचनाकार प्रकाशन, दिल्ली, 1985
8. बद्री सिंह भाटिया, मुश्तरका जमीन : भावना प्रकाशन, दिल्ली, 1986
9. निरंजनदेव शर्मा, समकालीन हिन्दी कहानी का तासीर : हिमप्रस्थ (अक्टूबर–नवम्बर, 2002), पृष्ठ 125, 127